स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी संकल्पना

डॉ0 प्रभा गौतम,

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, विद्यान्त हिन्दू पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ, उ0प्र0

शोध सारांश

आधुनिक युग में भारत को पुनर्गठित करने में अनेक कारणों के अतिरिक्त अनेक महापुरुषों ने अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। विवेकानन्द एक धर्मोपदेशक एवं सन्यासी थे, उन्होंने वेदान्त एवं दर्शन की आध्यात्मिक प्रेरणा को मानवीय स्वरूप प्रदान कर त्याग, करुणा, जनसेवा एवं राष्ट्र सेवा के रूप में प्रस्तुत किया। उनका राष्ट्रवाद सार्वभौमिकता और मानवता पर आधारित है। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को भारतीय संस्कृति का जयघोष कर चुनौती प्रस्तुत करके, पश्चिमी संस्कृति के अन्धानुकरण को भारतीय परिवेश के लिए निरर्थक बताया। उन्होंने अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर बल दिया। विवेकानन्द ने आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के आवरण में सुप्त भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जाग्रत किया। राष्ट्र निर्माण के लिए विवेकानन्द ने समाज में व्याप्त आर्थिक व सामाजिक असमानता को शान्तिपूर्ण आध्यात्मिक आधार पर समाप्त करने पर बल दिया। स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्रवाद धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक पुनरुथान पर आधारित है।

मुख्य शब्द – *स्वामी विवेकानन्द, राष्ट्रवाद, आध्यात्मिक, स्वतन्त्रता, धर्म, राष्ट्र, समानता*

स्वामी विवेकानन्द का जन्म ऐसे कालखण्ड में हुआ जब भारत चतुर्दिक घोर निराशा के वातावरण में आकण्ठ डूबा हुआ था। भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थिति सदियों की दासता के पश्चात् घोर हताशा और निराशा के वातावरण में परिसंचरण कर रही थी। भारत में राजनीतिक एवं सामाजिक एकता का अभाव था, धार्मिक दृष्टिकोण से भी हिन्दू एवं बौद्ध धर्म विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण से आत्महीन एवं चेतनाशून्य हो चुके थे। अंग्रेजी शासनकाल में ईसाई मिशनरियों के आने के पश्चात् भारतीय समाज और अधिक अवसाद एवं कुण्ठा के दौर से गुजर रहा था। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन को अंग्रेजों द्वारा दमन के पश्चात् अंग्रेजों का विरोध करने का साहस देशी शासकों का भी नहीं रहा था, उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में अपने अधिकारों की रक्षार्थ अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय आदिवासी और वनवासी समुदायों द्वारा किये गये विद्रोह भी अंग्रेजों द्वारा सफलतापूर्वक दमित कर दिये गये, ऐसे निराशापूर्ण अन्धकार में स्वामी विवेकानन्द का जन्म भारतीय समाज के लिए अरुणोदय के रूप में हुआ। उनका जन्म भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्टिकोण से एक वरदान के रूप में हुआ। विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था, उनके बाल्यकाल का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था, विवेकानन्द नाम उन्होंने, सन्यास लेने के पश्चात्, शिकागो की धर्मसंसद में भाग लेने से पूर्व ग्रहित किया। पारिवारिक प्रभावों के अतिरिक्त पश्चिमी विद्वानों ह्यूम, काण्ट, डार्विन, मिल, हीगल के विचारों के अध्ययन द्वारा उनका विश्लेषक व्यक्तित्व विकसित हुआ, वह संगीत एवं काव्य में भी रूचि रखते थे। नवम्बर 1881 में रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट क्रान्तिकारी सिद्ध

हुई और कुछ समय पश्चात् उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। विवेकानन्द एक तेजस्वी, विचारशील व्यक्तित्व के सन्यासी थे, वह विश्व के समक्ष भारतीय श्रेष्ठता के विचार को प्रस्तुत करना चाहते थे, साथ ही भारत में व्याप्त समस्याओं का समाधान भी चाहते थे। सन् 1893ई0 में अमेरिका के शिकागो शहर में सर्वधर्म सम्मलेन में प्रतिभाग करने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ, जहाँ जनसमुदाय को 'अमेरिका निवासी बहनों और भाइयों' का सम्बोधन ने वहाँ की जनता को अत्यन्त भ्रातत्व भाव से परिपूर्ण, मानवजाति की एकता का दिव्य संदेश दिया। इस प्रसंग पर रोमाँ रोलां ने कहा कि, ''वह श्रीरामकृष्ण का ही विश्वास था जो सभी विघ्न, बाधाओं को पार करता हुआ उनके महान शिष्य के मुख से निर्गत हुआ था।'' अमेरिकी समाचार–पत्रों द्वारा उन्हें पूरे सम्मेलन का सर्वश्रेष्ठ एवं महानतम व्यक्तित्व की उपाधि से सुशोभित किया। धर्म महासभा के अन्तिम दिन उनका कथन कि, ''इस धर्म महासभा ने यदि जगत को कुछ दिखाया है तो वह यही है कि पवित्रता, शुद्धता और दयाशीलता किसी एक विशेष सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं है तथा प्रत्येक धर्म में महान और सच्चरित्र नर–नारियों का जन्म हुआ है। यदि कोई यह स्वप्न देखे कि अन्य सभी धर्म लुप्त हो जायेंगे और एकमात्र उसी का धर्म बचा रहेगा तो मुझे उस पर दया आती है। ..... शीघ्र ही हम देखेंगे कि सारे प्रतिरोधों के बावजूद भी हर एक धर्म की पताका पर अंकित होगा 'युद्ध नहीं–सहायता, विनाश नहीं ग्रहण, मतभेद और कलह नहीं–मिलन और शान्ति'। शिकागो के धर्म सम्मेलन में स्वामीजी के उद्गारों ने भारत की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया और हिन्दू धर्म को 'विश्ववरेण्य' बना दिया।

विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों पर प्रकाश डालने से पूर्व यह ध्यातव्य है कि विवेकानन्द एक आध्यात्मिक गुरु थे, न कि एक राजनीतिक विचारक। उन्होंने इस विषय में स्वयं कहा था कि, ''मैं ने राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आन्दोलनकारी, मैं केवल आत्म तत्व की चिन्ता करता हूँ, जब वह ठीक होगा, अन्य सब कार्य स्वतः ठीक हो जायेंगे।'' उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों या व्याख्यानों में प्रत्यक्ष तौर पर राष्ट्रवाद से सम्बन्धित विचारों का उल्लेख नहीं मिलता है। उन्होंने परतन्त्रता के समय में अपने धर्म, संस्कृति, समाज के सुन्दरतम पक्ष को विश्व के सम्मुख रख हताश सुप्त भारतीयों में राष्ट्रवाद, स्वाभिमान, आत्मविश्वास के भाव जाग्रत करने का प्रयास अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से किया। उन्होंने वेदान्त का निरूपण इस दृष्टि से किया है कि वह वर्तमान काल में मनुष्य द्वारा हृदयंगम किया जा सके। इसी दृष्टिकोण से उनके विचारों का अनुशीलन करना समीचीन होगा।

स्वामी विवेकानन्द स्वतन्त्रता के साधक थे, उनके अनुसार आध्यात्मिक साधना के लिए आध्यात्मिक स्वतन्त्रता आवश्यक है। अपने 'स्व' के साक्षात्कार करने से पूर्णता प्राप्त होती है लेकिन पराधीन देश की स्वतन्त्रता की चिन्ता छोड़कर आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का मार्ग ढूँढना व्यर्थ है, अतः पीड़ित मानवता की सेवा में ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। उनके अनुसार ''जीवन में सुख और समृद्धि, चिन्तन और कार्य में स्वतन्त्रता द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, जिस क्षेत्र में यह नहीं है, उस क्षेत्र में मनुष्य जाति और राष्ट्र का पतन निश्चित है।'' 'स्वतन्त्र बनो, एक स्वतन्त्र शरीर, एक स्वतन्त्र मस्तिष्क, एक स्वतन्त्र आत्मा यही वह वस्तुएँ है, जिसका अनुभव मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन में किया है, पराधीनता में भलाई करने की अपेक्षा स्वाधीनतापूर्वक बुराई करना अधिक श्रेष्ठ है।'' स्वतन्त्रता को उन्होंने मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार माना है, जिसमें व्यक्ति को अपने शरीर, बुद्धि और धन का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त होता है। विवेकानन्द द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता को उपनिषदों का प्रमुख सिद्धान्त बताया गया है, उनके अनुसार ऐसे सामाजिक नियम त्याज्य हैं जो स्वतन्त्रता सिद्धि में बाधक हैं एवं जो स्वतन्त्रता की प्रगति में

सहायक हैं उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। विवेकानन्द के 'सन्यासी गीत', जो बंगाल के देशप्रेमी क्रान्तिकारियों और राष्ट्रवादियों का प्रेरक बना, में उन्मुक्त स्वर में स्वतन्त्रता का महिमामण्डन किया है, जिसका भावार्थ हैः–

अपनी बेड़ियों को तोड़ डाल, जिन जंजीरों से तुम जकड़े हो–

वे दीप्तिमान सोने की हों अथवा काली निम्नकोटि की धातु की–

प्रेम, घृणा, शुभ, अशुभ, द्वैधता के सभी जंजालों को तोड़ डाल

तू समझ ले कि दास–दास है, उसे प्रेमपूर्वक पुचकारा जाय,

अथवा कोड़ों से पीटा जाय, दास दास है।

स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति की विचार एवं कार्य की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे, लेकिन वह स्वेच्छाचारिता के पक्षधर नहीं थे, उनका मत था कि स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि किसी की भी सम्पत्ति इत्यादि के संग्रहण में अवरोध का पूर्णतः अभाव हो, समाज हित में इसका नियमन वह आवश्यक मानते थे, लेकिन राष्ट्र व समाज द्वारा व्यक्ति के चिन्तन व कार्य स्वतन्त्रता पर अनावश्यक हस्तक्षेप व प्रतिबन्धों के विरुद्ध थे। वह सभी क्षेत्रों सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक स्वतन्त्रता के पक्षधर थे, धार्मिक स्वतन्त्रता के विषय में उनका मत था कि प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र को अपने विश्वास के अनुरूप धर्मपालन की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, बलात धर्म–परिवर्तन का उनके द्वारा विरोध किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द भारतीय समाज में व्याप्त असमानता से चिन्तित थे, स्वतन्त्रता समानता के बिना अपूर्ण है, लेकिन समाजवादियों की 'पूर्ण समानता' को वह व्यवहारिक नहीं मानते थे। उनका विचार था कि 'पूर्ण समानता न तो कभी रही है और न ही इस पृथ्वी पर कभी स्थापित हो सकती है। इस असम्भव समानता का अर्थ है 'पूर्ण मृत्यु'। इस प्रकार विवेकानन्द निरपेक्ष समानता के विचार को स्वीकार न करते हुए इस बात पर बल देते हैं कि प्रदत्त स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक को अवसर की समानता प्राप्त हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति निजी एवं सामाजिक उन्नति से लाभान्वित हो सके। समानता स्थापित करने के लिए उनका मन्तव्य था कि इसके लिए सामाजिक विशेषाधिकारों का अन्त, स्त्री–पुरुष समानता, सर्वशिक्षा, दरिद्रता का उन्मूलन करना होगा।

प्राचीन वर्णव्यवस्था का स्वामी विवेकानन्द द्वारा विरोध नहीं किया गया है क्योंकि यह कार्य के विशेषीकरण पर आधारित थी, लेकिन जाति प्रथा के उद्भव ने सामाजिक गतिशीलता और विकास को अवरुद्ध कर दिया है। कुछ विशिष्ट जातियों में जन्म लेने के उपरान्त ही उनकी स्वतन्त्रता और अवसर की समानता का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। वह इस असमानता को दूर करना चाहते थे, लेकिन इससे उनका अभिप्राय यह नहीं था कि 'उच्च वर्ग को निम्न वर्ग में लाया जाये' अपितु निम्न स्तर के व्यक्तियों को उच्च स्तर पर लाकर लक्ष्य प्राप्ति की जाये। अवसर की समानता को वह समानता स्थापित करने का मूल मन्त्र मानते थे, लेकिन इसके लिए वह विशिष्ट उपचार के भी समर्थक थे, उनके अनुसार ''जिन लोगों को प्रकृति ने तीक्ष्ण विवेक शक्ति प्रदत्त नहीं की है, उन्हें अधिक सहायता की आवश्यकता होती है।''

स्वामी विवेकानन्द व्यक्तिवाद के पोषक नहीं थे, वह 'स्व' में नहीं, 'स्वहीनता' में विश्वास करते थे। उनके अनुसार इन्द्रियाँ कहती हैं सर्वप्रथम मैं, नैतिकता कहती है, मुझे स्वयं को सबसे अन्त में रखना चाहिए क्योंकि व्यक्ति का अन्तिम उद्देश्य शाश्वत सत्ता को प्राप्त करना है जो परकल्याण में ही निहित है, स्वार्थसिद्धि में नहीं।

स्वामी विवेकानन्द समाजवाद के सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से प्रभावित थे, भारत की निर्धनता ने उन्हें समाजवाद की ओर आकृष्ट किया। इस विषय में उन्होंने कहा कि, ''मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मेरी दृष्टि में यह सर्वगुण सम्पन्न प्रणाली है, बल्कि इसलिए कि भूखे रहने से अच्छा है, आधी रोटी पा लेना, एक ही वर्ग को सर्वदा सुख व दुःख प्राप्त होने से अच्छा है कि सुख व दुःख का विभाजन कर लिया जाय। साम्राज्यवाद को वह आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी स्थापित करना चाहते थे। विवेकानन्द का भारतीय जाति प्रथा के प्रति दृष्टिकोण एवं 'समान अवसर' का सिद्धान्त उनके समाजवादी समर्थक होने का प्रमाण है। सदियों से शोषित श्रमजीवी वर्ग का भाग्योदय वह समाजवाद में देख रहे थे लेकिन समाजवाद के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने हिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति का समर्थन नहीं किया है। चरित्र की शुद्धता, भ्रातृत्व, आध्यात्मिकता, प्रेम, करुणा द्वारा वह इसे स्थापित करना चाहते थे, जो स्थायी होगा। वह चारों वर्गों की एकजुटता को राष्ट्रनिर्माण के लिए आवश्यक मानते थे। उनका मत था कि ब्राह्मण का ज्ञान, क्षत्रिय का साहस, वैश्य की व्यापार कला एवं शूद्रों के श्रम के सन्तुलन से आदर्श राज्य का निर्माण होगा। राष्ट्र के विकास के लिए उन्होंने 'दरिद्र नारायण' की संकल्पना को प्रस्तुत किया है।

भारतीय धर्म व संस्कृति को विवेकानन्द भारत का ऊर्जा स्रोत एवं मेरुदण्ड मानते थे, क्योंकि इन्होंने भारत की एकता और स्थिरता को बनाये रखने के लिए सृजनशील शक्ति के रूप में कार्य किया है, जब कभी राजनीतिक शक्ति शिथिल हुई तो धर्म ने इसे सम्बल प्रदान किया है। विदेशियों द्वारा भारतीय धर्म संस्कृति को विनष्ट करने के लिए अनेकानेक प्रहार किये गये। सभ्यता, संस्कृति, धर्मविहीन राष्ट्र का अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास का कोई औचित्य नहीं है, जब मूल ही समाप्त हो रहा है तो निर्माण सम्भव नहीं है। विवेकानन्द द्वारा कहा गया कि, ''मुझे गर्व है कि मैं उस धर्म से हूँ जिसने दुनिया को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति की शिक्षा दी, हमारी संस्कृति द्वारा केवल मानव जाति को ही नहीं अपितु सर्व प्राणिमात्र एवं वनस्पति को समवेत किया है। एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः ..... विशाल और सूक्ष्म सभी को भारतीय संस्कृति में स्थान प्राप्त हुआ है। भारतीय धर्म में जो कमियाँ परिलक्षित हो रही हैं, उनका कारण वह पाखण्ड, अन्धविश्वास, अज्ञानता को मानते थे, लेकिन धार्मिक उपदेश या सुधार से पूर्व वह व्यक्तियों की गरीबी और कष्टों का हरण करना चाहते थे। सभी धर्मों को वह एक दृष्टि से देखते थे, चूँकि सभी धर्मों का लक्ष्य एक है, प्रत्येक व्यक्ति को वह अपने धर्म का पालन करते हुए दूसरे धर्मावलम्बियों के व्यक्तियों के साथ सम्मान भाव से व्यवहार करने का उपदेश देते हैं। उनका मानना था कि विश्व की कोई भी सभ्यता एवं संस्कृति सम्पूर्ण नहीं है, भारत की आध्यात्मिक परम्परा सम्पन्न है तो गरीबी और अशिक्षा यहाँ व्याप्त है, वहीं पश्चिमी राष्ट्र सम्पन्न हैं तो अति भौतिकवाद से वहाँ निरन्तर भय, प्रतिस्पर्द्धा एवं असन्तोष का वातावरण बना हुआ है जिसने साम्राज्यवाद, वाणिज्यवाद जैसी मानव हित विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। उनका विचार था कि दूसरे राष्ट्रों के आदर्शों को अपनाकर हम भारत निर्माण नहीं कर सकते, हमारा मेरुदण्ड धर्म है, धर्म ही भारत की आत्मा है। यदि हम वाह्य आदर्शों को अपनाकर नवनिर्माण करना चाहते हैं तो निश्चित रूप से भारत नष्ट हो जायेगा, साथ ही उन्होंने कहा कि विश्व की कोई भी शक्ति भारत के आधार को नष्ट करने की शक्ति नहीं रखती। यदि भारत द्वारा सामाजिक समानता, गरीबी उन्मूलन, संगठन कौशल जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया जाय तो वह सर्वश्रेष्ठ सम्पूर्ण राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष होगा। विवेकानन्द का विचार था

कि परिवर्तन शक्तिबल द्वारा नहीं, अपितु धर्म द्वारा किये जाने चाहिए।

विवेकानन्द द्वारा स्वउद्देश्य प्राप्ति के लिए शक्ति एवं निर्भयता के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, उनके अनुसार आज भारत को आवश्यक है लोहे की माँसपेशियों, इस्पात की तन्त्रिकाओं और प्रकाण्ड संकल्प की, जिसका कोई प्रतिरोध नहीं कर सके। उनका मत था कि भीरु, उदासीन व्यक्ति जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते, उनका प्रत्येक नर–नारी को संदेश था कि जीवन संघर्ष में वीर बनो, कहो सबसे कि तुम निर्भय हो, भय का परित्याग करो, क्योंकि भय मृत्यु है, भय पाप है, भय अधार्मिकता है, भय का जीवन में कोई स्थान नहीं है। उनका मानना था कि कोई भी राष्ट्र आत्मबल के बिना अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है, अप्रत्यक्ष रूप से उनका यह विचार भारतीय स्वाधीनता के लिए जनजागरण और मार्ग प्रशस्तीकरण कर रहा था। उनके अनुसार 'मेरे धर्म का सार शक्ति है, जो धर्म, हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता, वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है, शक्ति धर्म से वृहत है और शक्ति से वृहत कुछ भी नहीं, शक्ति ही जीवन है, कायरता ही मृत्यु है।

विवेकानन्द तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को मानव हित में नहीं मानते थे, क्योंकि यह बालक के सर्वांगीण विकास में बाधक है, यह रोजगार उत्पन्न कर सकती है, लेकिन राष्ट्र के चरित्र निर्माण, सामाजिक भावना के विकास एवं साहस उत्पन्न करने में अक्षम है। उन्होंने सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यवहारिक शिक्षा पर बल दिया, जिससे कि जनसाधारण को जीवन संघर्ष के लिए तैयार किया जा सके, उन्होंने इस विषय में कहा कि, ''तुमको कार्य के सभी क्षेत्रों में व्यवहारिक बनना पड़ेगा, सिद्धान्तों के ढेर ने सम्पूर्ण देश का विनाश कर दिया है।''

विवेकानन्द का सम्पूर्ण दर्शन राष्ट्रवादी विचारों से ओतप्रोत है, राष्ट्रवाद का तात्पर्य है, ''मूल्यों के पद सोपान में स्वराष्ट्र की सर्वोच्चता''। उनका सम्पूर्ण विचार मंथन उनके महानतम राष्ट्रवादी होने को सिद्ध करता है। भारतीय आध्यात्मिकता, सामाजिक, आर्थिक पुनरुत्थान उनके चिन्तन का प्रमुख केन्द्रबिन्दु है, उनके द्वारा प्रत्यक्षतः विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान नहीं किया गया, सम्भवतः उनकी दृष्टि में राष्ट्र इसके लिए उस समय परिपक्व नहीं था। सर्वप्रथम वह राष्ट्र को एकत्रित कर उसमें शक्ति, साहस, ओज का संचार कर राष्ट्र को निर्मित करना चाहते थे, दूसरे सम्भवतः उन्हें भय था कि यदि विदेशी शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए उन्होंने राष्ट्र का आह्वान किया तो अंग्रेजी शासन उन्हें प्रताड़ित कर सकता है और उनके द्वारा राष्ट्र निर्माण का कार्य अवरुद्ध हो जायेगा, इसीलिए उनके सभी राष्ट्रवादी विचार धर्म एवं अध्यात्म के आवरण में है। राष्ट्रवाद के विकास के लिए वह भारतीयों को विदेश जाकर प्रचार–प्रसार करने पर भी बल देते थे। इस विषय में उन्होंने कहा कि, ''विस्तार जीवन का लक्षण है, हमें बाहर जाना होगा, विस्तार करना होगा, अपने जीवन को प्रदर्शित करना होगा.....। भारत को विश्व विजय करना होगा.....। यही हमारी शाश्वत विदेश नीति होनी चाहिए, लेकिन यह विस्तार आर्थिक या राजनीतिक नहीं, अपितु आध्यात्मिक होगा। विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचार पुनरुत्थानवादी है, क्योंकि यह भारतीय अतीत के गौरव पर आधारित है। उन्होंने इस विषय में विचार व्यक्त किया है कि वैश्विक इतिहास में भारत के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसा राष्ट्र नहीं है जिसने मानव मन के उत्थान के लिए भारत जितना कार्य हो, भारत एक जमीन का टुकड़ा नहीं है, अपितु 'पुण्यभूमि' है। इसका पतन असम्भव है, यदि ऐसा होता है तो सम्पूर्ण विश्व से आध्यात्मिकता, नैतिकता, आदर्शों का विलोपन हो जायेगा। उन्होंने भारत के गौवरशाली इतिहास के अध्ययन पर बल दिया। उनका मानना था कि इससे भारत की निराशा, हताशा समाप्त होकर गौरवपूर्ण भविष्य का निर्माण

होगा। भारत निर्माण के लिए भारत की सम्पूर्ण शक्ति को वह एकत्रित करना चाहते थे, उन्होंने सभी भारतीयों द्वारा उद्घोष का आह्वान किया कि, ''मैं भारतवासी हूँ, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र व पीड़ित भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सभी मेरे भाई हैं।''

स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचार–चिन्तन के विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लम्बी दासता और निरन्तर विदेशी आक्रमणों के कारण सुप्तप्राय चेतनाशून्य भारतीय राष्ट्रीयता को जाग्रत करने में उनके विचारों का महान योगदान रहा है। भारत में राष्ट्र के लिए चेतना वैदिक काल से भारतीय संस्कृति में निरन्तर प्रवाहित हो रही है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में 'माताभूमिः पुत्रो•हं पृथिव्या' में राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं श्रद्धाभाव निहित है। भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी, सांस्कृतिक विभिन्नताओं व विशाल जनसंख्या वाला राष्ट्र रहा है लेकिन भारतीय संस्कृति में एक मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही है, जिसे जाग्रत कर पुनर्संगठित करने में विवेकानन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विवेकानन्द का सम्पूर्ण चिन्तन आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक पुनरुत्थान का केन्द्र है। वह भारत की सम्पूर्ण शक्ति को एकत्रित करना चाहते थे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वामी विवेकानन्द का विचार चिन्तन निश्चित ही प्रेरणादायक रहा है। उनके राष्ट्रवादी विचारों को बंगाल के प्रमुख क्रान्तिकारी, स्वतन्त्रता सेनानी, विपिन चन्द्रपाल, अरविन्द घोष, सुभाषचन्द्र बोस, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी द्वारा अपने चिन्तन में समाहित कर उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया। निश्चित ही भारत के राष्ट्र निर्माण में विवेकानन्द की भूमिका एक सुदृढ़ आधारशिला के रूप में है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Bakshi S.R. Sharma K.C. (Ed.), Encyclopedia of Indian Nationalism, Vol. IX, Vista International Publishing House, New Delhi, 2007.
2. Chandra Bipin, Eassays on Indian Nationalism, Haranand Publication Pvt. Ltd., New Delhi, 1993.
3. Sarkar Sumit, Modern India, 1885-1947, MacMillan India Press, Madras, 1983
4. Singh Birendra Kumar, Encyclopedia of Indian Freedom Fighters, Vol. VIII, Centrum Press, New Delhi, 2011
5. Rathod P.B., Modern Indian Political Thinkers, Common Wealth Publishers, New Delhi, 2005
6. The Complete Works of Swami Vivekanand, अल्मोड़ा, अद्वैत आश्रम
7. रोला रोमां, The Life of Vivekanad, अल्मोड़ा, अद्वैत आश्रम, 1936
8. दत्त भूपेन्द्रनाथ, Vivekananda Patriot Prophet, नवभारत पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1954
9. वर्मा वी0पी0, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2010
10. नागर डॉ0 पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1989
11. गाबा ओ0पी0, भारतीय राजनीतिक विचारक, नेशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2019